संज्ञा शब्द की स्पष्टता

आधुनिक विज्ञान की खोजों से पूर्व जैन आगम ये प्रतिपादन करते थे कि मानसिक भावों के जन्म के पीछे शारीरिक द्रव्य भी कारण है। मन की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, वह काया का ही एक रूप है। सभी पदार्थ काय योग के रूप में ही गृहीत होते हैं। उनमें से कुछ वचनयोग के रूप में तो कुछ मनोयोग के रूप में विसर्जित होते हैं। शेष काय योग के रूप में आते हैं।

आधुनिक विज्ञान भी यही मानता है कि मनुष्य की सत्ता न पूर्णतः Physical है, न पूर्णतः Mental है। वह दोनों का समन्वित रूप है। वह मनोदैहिक है— Psycho-somatic है। उसका मन शरीर के रसायनों हार्मोनों के प्रभाव से ही संचालित होता है, प्रतिक्रिया करता है, आवेगों, आवेशों को धारण करता है तथा अच्छी बुरी आदतों का निर्माण करता है।

भगवान् महावीर स्वामी ने मन की अवस्थाओं का चित्रण करते हुए कई शब्दों का प्रयोग किया है। लेश्या, संज्ञा, कषाय, अध्यवसाय आदि शब्द मन की अवस्थाओं की व्याख्या करते हैं।

कषाय, संज्ञा तथा लेश्या कभी-कभी समानार्थक सी प्रतीत होती हैं, परन्तु आगमकारों को इनका अर्थ भिन्न-भिन्न अभिप्रेत रहा होगा। लघुदण्डक में ये अलग-अलग द्वारों के रूप में गिने गए हैं तथा संजय नियंठे आदि भगवती सूत्र के अध्ययनों में भी इनका पृथक्-पृथक् परिगणन किया है।

इस पृथक् ग्रहण को आधार बनाकर इनकी भिन्न रूपता को स्पष्ट करने का भाव है।

कषाय का संबंध सीधा मन से है, जबकि संज्ञाओं का संबंध शरीर

से भी है। जब शरीर में सूक्ष्म किस्म के स्राव (Secretions) ग्रंथियों से होते हैं और स्राव मानसिकता को प्रभावित करते हैं तब उन्हें संज्ञा कहा जाना चाहिए, जब मानसिक भाव उन स्रावों से अलग, स्वतंत्र रूप से मन में उद्‌भव होते हों, वे कषाय कहे जाने चाहिए।

स्थानांग सूत्र चतुर्थ स्थान चतुर्थ उद्देशक में चार संज्ञाओं के चार-चार कारण फरमाए हैं।

आहार संज्ञा का सर्वप्रथम कारण तो 'ओम कोष्ठता' बताया है। अर्थात् जब शरीर के पाचन तंत्र के विभिन्न रस अपनी उपयोगिता के लिए भोजन की मांग करते हैं वह ओम कोष्ठता है। यह शरीर खरबों कोशिकाओं से बना है, सभी कोशिकाओं को जीने के लिए खुराक की आवश्यकता होती है। यदि उन्हें बाहरी वातावरण से भोजन न मिले तो वे मरने लगती हैं। शरीर में जिस किस्म का तत्व न्यून हो जाता है, मन और जीभ का स्वाद उसी तत्व के लिए बेचैन होने लगता है। यदि शरीर में Minerals की कमी हो जाए तो मिट्टी खाने तक की इच्छा हो जाती है Protein की कमी हो तो दूध दही आदि की ओर मन आकर्षित हो जाता है, Dehydration होने लगे तो पूरा शरीर और इसके माध्यम से मन भी पानी या नमक चीनी की मांग करने लगता है। Sugar कम होते ही भूख लगने लगती है, यह सब ओम कोष्ठता है। शरीर की आवश्यकता के बिना भी किसी पदार्थ को स्वाद पूर्ति के लिए खाने की इच्छा को कषाय कहा जाना चाहिए, जबकि शरीर की Basic Demand जब मन के दरवाजे खटखटाने लगे तब उस मानसिक इच्छा को संज्ञा कहा जाना चाहिए। आहार संज्ञा का पहला कारण ही पर्याप्त नहीं है, आगमकारों ने उसके पीछे आभ्यंतर कारण भी जोड़े हैं। यही जैन चिन्तन की विशेषता रही है कि यहां एकांगी विचारधारा न रहकर सत्य का सर्वांङ्गीण स्वरूप मिलता है।

शारीरिक कोशिकाओं की आवश्यकताओं के उभरते ही कर्म जगत भी हलचल में आ जाता है और वेदनीय कर्म उभर जाता है। इसे आगमकारों की भाषा में कहें तो 'क्षुधा वेदनीय कर्म का उदय' होता

है। यहां यह ध्यातव्य है कि मूल कारण औदारिक आदि स्थूल शरीरों की Demand संज्ञा की उत्पत्ति में कारण हैं, क्षुधा वेदनीय कर्म तो उसके सहयोगी कारण के रूप में बाद में प्रकट होता है। वह स्वतंत्र रूप से भूख नहीं लगाता। मगर ओमकोष्ठता का आन्तरिक सहायक अवश्य बनता है। आहार संज्ञा का तीसरा कारण सोच है, इसे आगम में 'मति' कहा है। जब कोई प्राणी अन्दर ही अन्दर किसी पदार्थ विशेष के स्वाद की कल्पना में डूबकर या भोजन आदि के समय को याद कर मन को खाने के लिए तैयार करता है तब भी आहार संज्ञा प्रकट हो जाती है। यह संज्ञा कषाय प्रेरित है या यों कहना चाहिए इस स्तर की इच्छा ही कषाय है। आहार संज्ञा का चौथा कारण खाद्य पदार्थ का प्रयोग है। आगम की भाषा में 'तदर्थोपयोग' है। खाद्य पदार्थ खाते समय जीभ की तृप्ति होती है, रक्त कोशिकाओं की संपूर्ति होती है, वेदनीय कर्म निर्जीर्ण हो जाता है और मन को गहरी संतुष्टि मिलती है। यह संतुष्टि भी आहार संज्ञा कहलाती है। इस प्रक्रिया में जितना-जितना अंश शारीरिकता का है उसे संज्ञा कहा जाए और जितना-जितना अंश मानसिकता का है, उसे कषाय कहा जाए। रशिया के एक प्रसिद्ध मनोविज्ञानी डा. पाव लोव ने प्रयोग किया। उसने अपने कुत्तों को जब-जब खाना दिया तब-तब घंटी बजानी शुरू कर दी। शुरू-शुरू में कुत्तों का Enzyme System भोज्य पदार्थ के सेवन से जुड़ा और उनके मुंह में Saliva लार बनने लगती। लेकिन अन्तर्मन में भोजन और घंटी की आवाज संयुक्त रूप से जुड़ गई, Associate हो गई। घंटी बजते ही उनके शरीर में लार बनने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती थी। इस बात की पुष्टि तब हुई जब पावलोव ने रोजाना के निर्धारित समय से कुछ घंटे पूर्व ही घंटी बजा दी और सभी कुत्तों के पाचनतंत्र ने Saliva Systems में Automatic ढंग से React करना प्रारंभ कर दिया और उनकी लार बाहर आने लगी। इस शोध को मनोवैज्ञानिकों ने Pavlov Effect कहकर विशेष महत्व दिया है। जैनागमों में तो ये विषय सहस्राब्दियों पूर्व विवेचित हो चुका है। सामान्य मानवों में आहार

की इच्छा चारों कारणों से होती है, जबकि कुछ विशिष्ट साधकों में अंतिम दो कारण मति-तदर्थोपयोग नहीं रहते। उन्हें अप्रमादी साधक कहा जाता है। वे आहार लेते हैं तो ओमकोष्ठता तथा क्षुधा वेदनीयोदय से लेते हैं, चारों कारणों से नहीं। भगवती सूत्र में उन्हें 'नोसंज्ञोपयुक्त' कहकर अलग Category में रखा है। 'नोसंज्ञोपयुक्त' का अर्थ संज्ञा का अभाव नहीं है अपितु समग्र कारणों सहित, सभी संज्ञाओं का न होना है। आगमों में तीर्थंकरों तथा सामान्य केवलियों द्वारा आहार ग्रहण का उल्लेख मिलता है। उमास्वाति कृत तत्वार्थ सूत्र में 'एकादशजिने' (9-11) कहकर केवलियों में क्षुधापिपासा परीषहों की स्वीकृति दी है। अनमें खाने की इच्छा, पीने की इच्छा ही भूख और प्यास है। यह इच्छा देहधारण तक बनी रहती है। लेकिन उसका कारण मति और तदर्थोपयोग नहीं होता।

भय संज्ञा के चार कारणों में प्रथम कारण हीन सत्वता है। शारीरिक सामर्थ्य का अभाव है। मानव बड़े गड्ढे को पार नहीं कर सकता, किसी पर्वत पर या वृक्ष पर बन्दर की तरह उछलकर चढ़ उतर नहीं सकता तो वह बचकर दूसरा रास्ता ले लेता है। अपने शरीर की Security जिस भी तरीके से हो उस तरीके को अपनाना मानव की Basic Instinct है। मानव के Body Reflex उसे खतरे के मौके से बचने का उपाय बता देते है। एकदम उछलकर इधर-उधर होना या आंखें बंद हो जाना, पसीना छूटना, कभी-कभी पक्षाघात, हृदयाघात जैसा आक्रमण हो जाना भी हीन सत्वता है। हीन सत्वता प्रकट होते ही भय मोहनीय कर्म भी उदय में आ जाता है। ये तथ्य नहीं भूलना कि हीनसत्वता के कारण भय मोहनीय के उदय की संभावना अधिक होती है, भय मोहनीय के उदय से हीनसत्वता के प्रादुर्भाव की संभावना कम। तीसरा कारण मति है, मन ही मन किसी भी व्यक्ति परिस्थति की कल्पना करके मन को दुर्बल बनाना तन को सत्वहीन कर देना मति का कार्य है। Psychology में Phobia Chapter के अन्तर्गत भय की जितनी चर्चा है, वह मतिजन्य है। चौथा कारण तदर्थोपयोग

है। एक बालक अग्नि से नहीं डरता इसलिए उसमें हाथ दे देता है, एक बार जलने के बाद वह आग से सर्वदा के लिए बचने लगता है, ये तदर्थोपयोग है। भय संज्ञा प्रथम कारण तक तो शारीरिक सुरक्षा करती है। यदि ये संज्ञा नहीं हो तो कोई भी जीव अपनी सुरक्षा न करे, उच्चगुणस्थानों में पहुंचा हुआ साधक भी शरीर को जानबूझकर विनष्ट नहीं करता, अपितु पूर्ण सुरक्षा करता है। परन्तु उस साधक की इस सुरक्षा पद्धति में भयमोहनीय, मति तथा तदर्थोपयोग का योगदान नहीं होता इसलिए वह नोसंज्ञोपयोग युक्त है।

अप्रमत्त अवस्था आने पर साधक की साधना बिल्कुल सहज हो जाती है। वह केवल आत्मा को केन्द्र बनाकर मोहनीय कर्म से युद्ध प्रारंभ कर देता है। शरीर को अतिरिक्त साता देने की या अतिरिक्त कष्ट में डालने की चेष्टा भी नहीं करता। कर्मग्रंथ की मान्यता है कि 7वें गुण स्थान से लेकर आगे के किसी भी गुण स्थान में वेदनीय और आयु कर्म की उदीरणा नहीं होती। अर्थात् जीवात्मा का पुरुषार्थ आयु और साता-असाता वेदनीय के शीघ्र समापन पर नहीं लगता बल्कि घाती कर्मों के विरूद्ध ही आत्मा की ऊर्जा केन्द्रित हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि अप्रमत्त अवस्था आने पर शरीर के धर्म बदस्तूर चलते रहते हैं पर मन की प्रतिक्रियाएं परिवर्तित या अवरुद्ध होनी शुरू हो जाती हैं। भगवती सूत्र के 25वें शतक में कहा है कि पुलाक, निर्ग्रन्थ तथा स्नातक ये तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ तो नोसंज्ञोपयुक्त होते हैं जबकि बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील ये निर्ग्रन्थ संज्ञोपयुक्त भी हो सकते हैं, नोसंज्ञोपयुक्त भी। इसी तरह सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात चारित्र के धारक नोसंज्ञोपयुक्त ही होते हैं। सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहार विशुद्ध चारित्र वाले संज्ञायुक्त, नोसंज्ञायुक्त भी हो सकते हैं।

शरीर धर्म का निर्वाह प्रथम कारण से होना नोसंज्ञोपयुक्तता है तथा शेष तीन कारणों से होना संज्ञोपयुक्तता है।

तृतीय संज्ञा मैथुन संज्ञा है। दो शरीरों के परस्पर आकर्षण को

मैथुन संज्ञा कहा जाता है। इसे विज्ञान ने मूलभूत वृत्तियों में से एक कहा है। Desire to live, Desire to possess की तरह Desire for sex भी Basic Instinct है। जो विश्व के सभी प्राणियों में है। इसे मनोविज्ञान ने Libido भी कहा है। विज्ञान ने इसके दो ही कारण माने हैं– Biological और Psychological, जबकि आगमकारों ने इसके चार कारण प्रस्तुत किए हैं। प्रथम कारण है मांस शोणित की वृद्धि। इसे ही आज की शब्दावली में Sex Harmones कहते हैं। यह संज्ञा भी संसार की सभी गतियों और योनियों में है। इसका उद्देश्य मात्र सुखोपभोग की प्राप्ति नहीं होता। ये सृष्टि संचालन, संतानोत्पत्ति तथा प्रकृति संतुलन में भी सहायक होती है। जिस प्रकार शरीर संचालन और शरीर सुरक्षा की दृष्टि से आहार ग्रहण तथा भय धारण बुरा नहीं माना गया, ऐसे ही केवल सृष्टि संचालन के लिए कहीं ये संज्ञा हो तो इतनी बुरी नहीं मानी गई। लेकिन इस संज्ञा के पीछे बहुधा पश्चाद्वर्ती तीन कारण जल्दी ही जुड़ जाते हैं, वह भी मनुष्य गति में। इसलिए इसके बारे में बहुत स्पष्टता नहीं बन पाती। दूसरा कारण वेदमोहनीय का उदय है। यह शारीरिक कारण को एकदम एक तरफ कर देता है और स्वयं हावी हो जाता है। पूर्ववर्ती दो संज्ञाओं में कर्म का दबाव टल भी जाता है पर इस संज्ञा में नहीं। तदपि जागरुक व्यक्ति को दोनों कारणों की भिन्नता को जरूर समझ लेना चाहिए। अन्यथा शारीरिक संवेदन और कार्मिक मानसिक संवेदनों का अन्तर विलुप्त हो जाएगा। जिस व्यक्ति में जितनी देर तक जितनी मात्रा में शारीरिक धातुओं के कारण परकीय शरीर के प्रति आकर्षण है, तब तक वह संज्ञा अधिक कर्मबंध कारक नहीं होती पर वेद मोहनीय के उदय की मात्रा बढ़ने पर वह संज्ञा तीव्र हो जाती है। वेद मोहनीय पुरुष, स्त्री और नपुंसक वेदों को भड़काता है।

तृण की अग्नि के तापमान के समान साधारण उत्तेजना को उत्पन्न करने वाला तथा क्षणस्थायी कर्म पुरुष वेद मोहनीय है। उपले या कोयले की अग्नि के तापमान के तुल्य तीव्रतर उत्तेजना पैदा करने वाला व

चिर स्थायी कर्म स्त्री वेद मोहनीय कर्म है। तथा जलते हुए शहर की अग्नि के तापमान के सदृश तीव्रतम उत्तेजना का कारण बनने वाला व शाश्वत-स्वभावी कर्म नपुंसक वेद मोहनीय है। यद्यपि वेद मोहनीय का उदय नौंवे गुण स्थान तक है परन्तु सातवें गुण स्थान के बाद शारीरिक धातुओं का दबाव मन पर आना बन्द हो जाता है। इसलिए 7वें, 8वें गुण स्थान को नोसंज्ञोपयुक्त माना जाता है। वहां राग भी है, कषाय भी है, वेद भी है परन्तु मैथुन संज्ञा के समग्र कारण नहीं होते। जो होते हैं वे भी अति मन्द होते है, अतः संज्ञा होते हुए भी उस अवस्था को नोसंज्ञोपयुक्त नाम दिया जाता है। इस संज्ञा का तीसरा कारण मति अर्थात् मानसिक संकल्प है। मन में पुराने भुक्त भोगों की स्मृति की पुनरावृत्ति से इस संज्ञा को बढावा मिलता है। अधिकांश पशुओं में मैथुन संज्ञा का उद्‌भव ऋतु विशेष में होता है। जबकि मनुष्यों के लिए कोई ऋतु मास या समय निर्धारित नहीं है। कारण ये कि पशु इसके लिए मानसिक जुगाली नहीं करते। मनुष्य जाति काल-अकाल कभी भी इसका मानसिक मंथन करता रहता है अतः इसकी संज्ञा विकृत हो जाती है पशु की नहीं। उसकी संज्ञा प्राकृतिक अधिक है, मनुष्य की अप्राकृतिक।

तदर्थ के उपयोग में मनुष्य ने हजारों साधन इस संज्ञा की पूर्ति के लिए आविष्कृत कर लिए हैं। चित्र, संगीत, शृंगार, स्पर्श, गंध, रस, रूप सभी के उपयोग से मनुष्य अपनी मैथुन संज्ञा की तृप्ति कर लेता है जबकि पशु जगत में ऐसा नहीं है।

इस संज्ञा के विषय में जितना असंतुलित सांसारिक व्यक्ति है, कभी-कभी कुछ-कुछ उतना ही असंतुलित धार्मिक व्यक्ति भी हो जाता है। वह इसकी शारीरिकता को भी मानसिक मान लेता है, यही उसका असंतुलन है। इतनी सावधानी रहे तो फिर सत्य अखण्डित रहेगा तथा दृष्टि सम्यक् रहेगी।

चौथी परिग्रह संज्ञा का प्रथम कारण बताते हुए आगमकार फरमाते हैं कि अविमुक्तता से परिग्रह संज्ञा जन्मती है। पारिवारिक, सामाजिक,

राष्ट्रीय या अन्य किसी प्रकार का दायित्व वहन करना अविमुक्तता है। ये संज्ञा मानव जाति के उच्चतर गुणों के विकास में सहयोगी बन सकती है बशर्ते अगले कारणों का प्रदूषण इसमें न घुसे। एक पिता अपनी संतान का, एक संघपति अपने संघ की संस्थाओं का, एक अधिकारी अपने विभागों का, एक राष्ट्राध्यक्ष अपने राष्ट्र का संरक्षण संवर्धन करने के लिए धन संपत्ति, जमीन जायदाद आदि परिग्रह का अर्जन करता है तो यह सेवा का कार्य ही कहलाता है। साधु साध्वी भी वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि ग्रहण करता है, उनकी प्रतिलेखना प्रमार्जना करता है, पूर्ण सुरक्षा करता है, लेकिन वह परिग्रही नहीं है, यदि उसमें लोभ मूर्च्छा आसक्ति न हो। पहली तीन संज्ञाओं का प्रथम कारण शारीरिक है तो इसका प्रथम कारण सामाजिक है, फिर भी दोनों कारण बाह्य हैं, आन्तरिक नहीं। आन्तरिक कारण लोभ मोहनीय का उदय है। स्वलाभ से असंतुष्टि; एवं पर लाभ की आकांक्षा लोभ है। इसके कारण मन अशान्त रहता है तथा समाज आक्रान्त रहता है। तीसरा कारण 'मति' है, मानसिक सपनों के महल बनाना। भविष्य में जीने की रूचि मति है। प्रतियोगिता की भावना भी मति से उत्पन्न होती है। चौथा कारण तदर्थोपयोग है भोगोपभोग के साधनों (Consumer Commodities) का अधिक प्रयोग इस वृत्ति को बढावा देता है। इस संज्ञा की अपेक्षा भी अप्रमाद अवस्था के बाद नोसंज्ञोपयुक्तता आ जाती है क्योंकि मोहनीय का जोर घट जाता है। मन वृत्तियों के अनुसार नहीं, आवश्यकताओं के अनुसार चलता है। आवश्यकता चाहे शारीरिक हो, चाहे सामाजिक, उसकी पूर्ति को आगमकारों ने निषिद्ध नहीं किया, अपितु मानसिक वृत्तियों की पूर्ति को कर्मबन्ध का कारण माना है। इस आलेख का भाव ये है कि संज्ञा और कषाय में ये अन्तर है कि संज्ञा शरीर धर्म पहले है, मनोधर्म बाद में, जबकि कषाय केवल मानसिक दोष ही है। यदि संज्ञा शरीर धर्म हो तो अधर्म नहीं है, यदि कषाय प्रेरित हो तो धर्म नहीं है। संज्ञा मन से पृथक् भी हो सकती है, जबकि कषाय नहीं।